डर्बन (दक्षिण अफ्रीका)
दिसम्बर १५, १९९९

सन्देश संख्या १८

क्रियायोग का मुख्य उद्देश्य – स्वाभाविक अवस्था में होना

क्रियायोग का मुख्य उद्देश्य स्वाभाविक अवस्था (वेदान्त की ''सहजावस्था'', पतंजलि का ''स्वरूपेऽवस्थानम्'', गीता का ''स्वधर्म'' और लाहिड़ी महाशय की ''परावस्था'') में होना है। योग का अभिप्राय – मन और जीवन, ऐहिक और परम पवित्र, दिव्य बोधगम्य एवं दिव्य ज्ञानातीत, पवित्र एवम् लौकिक विचार, सतत चित्त चांचल्य से उत्पन्न विभेदकारी चित्तवृत्ति और एकात्म बोध (जिसमें उद्दीपन और अनुक्रिया का एक एकात्मक लय बन जाता है) के मध्य समन्वय है।

स्वाभाविक अवस्था में यह जीवन्त शरीर ग्रन्थियों और चक्रों से निर्देशित होता है। चित्तवृत्ति न तो एक घुसपैठिये की भाँति कोई हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार की मनोदैहिक समस्याओं, सन्तापों, विरोधाभासों, परेशानियों तथा दुर्दशाओं का सृजन कर पाता है। शरीर तब मन की विभीषिकाओं के गलाघोंटू पकड़ से छुटकारा पाता है। मन अपनी आत्मसंरक्षी–यन्त्ररचना द्वारा शरीर के ऊपर जबरदस्त पकड़ बनाये रखता है जिसके कारण जीवन का जीवन्त स्वरूप न हो जाता है। यही कारण है कि मन को विभेदकारी चित्तवृत्ति कहा जाता है यानी कि एक ऐसी चित्तवृत्ति जिसमें आप अस्तित्व की समग्रता और सामंजस्य से पृथक एवं वियुक्त हो जाते हैं।

चित्तवृत्ति की गलाघोंटू पकड़ का शिथिल होना ही प्रबोध का प्रारम्भ है। शरीर की स्वाभाविक अवस्था में विचार असतत रहता है। यह केवल तभी अस्तित्व में आता है जब कोई उद्दीपन अथवा प्रयोजन होता है। तब यह पूर्णता एवम् उत्कष के साथ यथोचित अनुक्रिया को उत्पन्न करता है।

मिथ्याभिमान निहित स्वार्थों के माध्यम से अनुक्रिया का ध्वंस नहीं कर पाता है। सत्यनिष्ठा सम्मुख आती है न कि मन के आत्मकेन्द्रित गतिविधियों की विभत्सता। यही है क्रियायोग न कि क्रियायोग के नाम पर गरिमा, महिमा मण्डन और तुष्टि की लालसा।

जानना ही, न कि मानने की दुनियाँ में फँसे रहना, क्रियायोग का अनुशासन है और प्रेम ही इसकी पूर्णता है। क्रियायोग साहस है समर्पण का, साहस है अहंकार के संहार का तथा साहस है सम्पूर्ण पिघल जाने का। वे जो शून्य हो सकते हैं, पूर्णता को प्राप्त करते हैं। वे जो मर मिट सकते हैं, जीवन्त स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

''भारत के शाश्वत प्रज्ञा की जय''